राष्ट्रवाद किसे कहा जाता है?

- सामान्य परिभाषा के रूप में हम ऐसा कह सकते हैं कि राष्ट्र, लोगों के ऐसे समुदाय को कहते हैं जिनका आपस में जुड़ाव होता है, जो किसी खास भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते हैं, जो एक ही ऐतिहासिक शक्ति की उपज होते हैं। वस्तुत: राष्ट्रवाद को प्रेरित करने में परंपरा, संस्कृति, भौगोलिक एकता आदि कारकों की भूमिका होती है।
- राष्ट्रवाद का आरंभिक मॉडल पश्चिमी यूरोप में विकसित हुआ था। यह सामंतवाद का पूँजीवाद में रूपांतरण का परिणाम था।
- भारत में राष्ट्रवाद के उद्भव की पृथक प्रक्रिया रही थी। यहाँ राष्ट्रवाद का विकास निम्नलिखित प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं -

1. राष्ट्रवाद की आरंभिक अभिव्यक्ति ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुई। इसे **आद्य राष्ट्रवाद** का नाम दिया गया है।
2. दूसरा चरण पश्चिमी विचारों के साथ आदान-प्रदान के माध्यम से संभव हुआ। इसे हम **आधुनिक राष्ट्रवाद** के रूप में जानते हैं।

भारतीय राष्ट्रवाद के संदर्भ में पश्चिमी विचार

- **पहला विचार**- ब्रिटिश अधिकारी जॉन स्ट्रैची और ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल मानते थे कि भारत न कभी राष्ट्र था और न कभी हो सकता है क्योंकि भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता अत्यधिक है।
- **दूसरा विचार**- पश्चिमी विचारक बेनेडिक्ट एंडरसन (इमेजिंड कम्युनिटी नामक लेख में) ने भारत में राष्ट्रवादी भावनाओं के उभार का श्रेय ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को दिया है। उनके अनुसार भारत में आधुनिक राष्ट्रवाद ब्रिटिश व्यवस्था के अनचाहे परिणाम के रूप में आया। कुल मिलाकर हम ऐसा कह सकते हैं कि ब्रिटिश शासन ने निम्नलिखित रूप में भारत को राष्ट्र बनने में अपना योगदान दिया, भले ही यह अनचाहा रहा हो-

1. **अंग्रेजी शिक्षा** के माध्यम से भारतीयों का एक वर्ग पाश्चात्य विचारों के सम्पर्क में आया, जिसने उन्हें आधुनिक, तर्कसंगत एवं विवेकपूर्ण राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाने का अवसर प्रदान किया। भारतीय बुद्धिजीवी भी अब स्वतंत्रता, समानता तथा प्रतिनिधित्व जैसे सिद्धांतों का महत्त्व समझने लगे थे। पाश्चात्य राजनीतिक घटनाओं; जैसे- अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम, फ्रांस की क्रांति, इटली, स्पेन, यूनान की क्रांतियों एवं इनके राजनीतिक महत्त्व को समझने में अंग्रेजी शिक्षा ने काफी मदद् की। इसी प्रकार मिल्टन, शेली, बायरन, वॉल्टेयर, रूसो आदि की विचारधाराओं से भारतीयों का परिचय हुआ।
2. **आधुनिक यातायात एवं संचार व्यवस्था;** जैसे- रेलवे, डाक एवं तार के विकास के परिणामस्वरूप एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों के बीच संपर्क बढ़ा। उन्नत यातायात के साधनों के परिणामस्वरूप भारत में क्षेत्रीयता की भावना का ह्रास हुआ। जनता एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्रों में जल्द आ-जा सकने लगी। बुद्धिजीवियों का भी आपसी संपर्क बढ़ा एवं इस तरह एक-दूसरे के विचार एवं समस्याओं से परिचय का भाव पैदा हुआ एवं स्वाभाविक रूप से एक अखिल भारतीय कार्यक्रम बनाना संभव हो सका।
3. **प्रिंट मीडिया** के कारण आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से विचारों का तेजी से प्रसार हुआ। इसकी मदद् से ही भारतीय राष्ट्रवादी लोगों के बीच प्रतिनिध्यात्मक सरकार, स्वतंत्र लोकतांत्रिक संस्थाओं, स्वाधीनता आदि जैसे विचारों का प्रचार सुगमतापूर्वक संभव हुआ।
4. **जनगणना** ने लोगों में समुदाय की भावना को मजबूत किया और एकता की भावना को बल प्रदान किया।
5. **प्रशासनिक एकीकरण**- ब्रिटिश ने भारत की भौगोलिक सीमा को स्पष्ट कर उसे एक पहचान दी। अर्थात् ब्रिटिश शासन ने अपने औपनिवेशिक आर्थिक एवं राजनीतिक हितों से परिचालित होकर समस्त देश को राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से एक सूत्र में बाँध दिया।

भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिवाद

1. अंग्रेजों ने हमेशा देशी भाषाओं के राष्ट्रीय प्रेस को कुचलने का प्रयास किया।
2. जाति और समुदाय पर आधारित जनगणना ने भारत को विभाजित करने का प्रयास किया।
3. प्राचीन काल से ही भारत भौगोलिक एकता की भावना रखता था।

राष्ट्र के पश्चिमी मॉडल और भारतीय मॉडल के बीच अंतर

1. एकरूपता बनाम विविधता अर्थात् राष्ट्रवाद का पाश्चात्य मॉडल भारतीय मॉडल से पृथक था। भारत एक महाद्वीपीय आकार वाला देश था तथा यहाँ बहुत अधिक सांस्कृतिक विविधता थी।
2. एक एकल राष्ट्रीय भाषा के स्थान पर भारत ने 14 प्रादेशिक भाषाओं को आधिकारिक भाषाओं का दर्जा दिया (वर्तमान में यह संख्या बढ़कर 22 हो गई है)।

3. भारत ने भाषायी राज्यों के सृजन और राष्ट्र की आधिकारिक भाषा के बारे में व्यावहारिक नीति अपनाते हुए विविधता में एकता का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया।

प्रश्नः क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि भारत में राष्ट्रवाद का उद्भव ब्रिटिश शासन की देन था?

उत्तरः यद्यपि यह सही है कि ब्रिटिश ने भारत में ऐसे कारकों को जन्म दिया, जिन्होंने राष्ट्र के रूप में भारत के विकास में अपनी भूमिका निभाई, फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि भारत में राष्ट्रवाद केवल ब्रिटिश शासन की देन है। इसके निम्नलिखित कारण हैं-

1. भारत में प्राचीन काल से जम्बूद्वीप की अवधारणा चली आ रही थी, जो भारत को एक भौगोलिक इकाई होने का एहसास दिलाती है।
2. जैसा कि ब्रिटिश विद्वान क्रिस्टोफर बायली भी मानते हैं कि 'भारत में प्राचीन काल से देशभक्ति, अच्छी सरकार आदि की अवधारणा प्रचलित थी।'

राष्ट्रवाद का विकास

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने भारत के विभिन्न सामाजिक वर्गों पर अपना प्रभाव छोड़ा और उनकी प्रतिक्रिया भी अलग-अलग हुई। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश शासन ने कुछ पुराने राजाओं और नवाबों को विस्थापित किया, आदिवासी समूह तथा किसानों का शोषण किया। अतः उनके द्वारा समय-समय पर विद्रोह एवं आन्दोलन संगठित किये गये। दूसरी तरफ, इसने शिक्षित भारतीयों पर अलग प्रकार का प्रभाव छोड़ा।

सिविल अथवा नागरिक आंदोलनः-

ब्रिटिश भारत में राजाओं, नवाबों और जमींदारों को उनके पद से विस्थापित कर दिया गया। इस कारण कुछ अधिकारी एवं सैनिक भी बेरोजगार हो गये। अतः राजा, नवाब, जमींदार एवं बेरोजगार सैनिक भी समय-समय पर विद्रोह करते रहे। फिर चूँकि उनकी प्रजा को उनसे लगाव होता था, अतः वे भी अपने स्वामी के साथ खड़े हो जाते थे। उदाहरण के लिए, हम कुछ विद्रोहों को देख सकते हैं -

1. **संन्यासी विद्रोह, बंगाल (1763-1800 ई.)**- बंगाल में अंग्रेजों द्वारा स्थापित नई अर्थव्यवस्था के कारण बेदखल हुए किसान, विघटित सिपाही, सत्ताच्युत जमींदार और धार्मिक नेता इस विद्रोह में शामिल थे। ये मूलतः कृषक थे, लेकिन इन्होंने संन्यासी का रूप धारण कर लिया था। इस आंदोलन का मुख्य केन्द्र बिहार तथा बंगाल था। ब्रिटिश सरकार ने सैन्य कार्यवाही कर इस विद्रोह को निर्ममतापूर्वक दबा दिया। इस विद्रोह में हिंदू तथा मुसलमानों ने कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष किया था।
2. **विजयनगरम् के राजा का विद्रोह (1794 ई.)**-1765 ई० में उत्तरी सरकार का जिला ब्रिटिश को प्राप्त हुआ। 1794 ई० में विजयनगरम् के शासक की स्वतंत्रता पर अंकुश लगा दिया गया। उसकी सेना भंग कर दी गई। फलतः इस क्षेत्र के लोगों ने विद्रोह कर दिया।
3. **त्रावणकोर के दीवान वेलु थंपी का विद्रोह (1805 ई.)** - त्रावणकोर के शासक पर सहायक संधि थोप दी गई। उस पर अनेक प्रकार का नियंत्रण लगाया गया। अतः क्रूर ब्रिटिश नीति के विरुद्ध त्रावणकोर के दीवान वेलु थंपी ने विद्रोह किया।
4. **तमिलनाडु में कित्तूर की रानी चेन्नम्मा का विद्रोह (1824 ई.)**- कित्तूर में उस समय एक प्रबल विद्रोह हुआ, जब 1824 ई० में स्थानीय शासक की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने गोद लिए गए कित्तूर के उत्तराधिकारी को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। इस पर दिवंगत शासक की विध वा रानी चेनम्मा ने विद्रोह कर दिया।
5. **मैसूर का विद्रोह (1831-34 ई.)**- टीपू की मृत्यु के बाद मैसूर का छोटा-सा राज्य वाडियार वंश के कृष्णराज तृतीय को दिया गया था एवं उस पर सहायक संधि थोप दी गई थी। चूँकि राजा को ब्रिटिश के लिए अधिक रकम उगाहनी थी, अतः किसानों पर भू-राजस्व की दर बढ़ा दी गई। फलतः जनता ने विद्रोह कर दिया।

जनजातीय आंदोलनः-

ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार ने अपने विस्तार के क्रम में जनजातीय क्षेत्रों पर भी कब्जा किया तथा फिर उस क्षेत्र का दोहन करने के क्रम में जनजातीय लोगों के जीवन में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। इस कारण जनजातीय लोगों में असंतोष उत्पन्न हुआ और वे समय-समय पर ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह करने लगे।

असंतोष के कारणः-

1. जनजातीय क्षेत्र में सामुदायिक संपत्ति की अवधारणा (खुँटकट्टी प्रथा) प्रचलित थी। परंतु ब्रिटिश ने भूमि पर निजी स्वामित्व की अवधारणा को आरोपित कर दिया तथा उनसे भू-राजस्व की बड़ी राशि वसूल की।
2. जिन क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन का विस्तार हुआ, वहाँ जमींदार, ठेकेदार एवं महाजन जैसे शोषक समूह भी पहुँच गये।
3. ठेकेदारों द्वारा जनजातीय लोगों को अनुबंधित श्रमिकों के रूप में चाय बागान अथवा अन्यत्र काम करने के लिए भेजा गया।

4. जनजातीय क्षेत्रों में बेठ-बेगारी (जबरन बेगारी) का प्रचलन था तथा जनजातीय लोगों से मुफ्त में श्रम लिया जाता था।
5. अफीम की खेती पर पाबंदी तथा 'झूम कृषि' पर पाबंदी के विरूद्ध जनजातीय लोगों द्वारा प्रतिक्रिया व्यक्त की गई।
6. देशी शराब बनाने के बदले जनजातीय लोगों पर प्रत्येक घर के हिसाब से आबकारी कर लगाया गया।

प्रमुख विद्रोह एवं आंदोलनः-

1. **कोल जनजाति का विद्रोह (1831 ई.)**- छोटा नागपुर क्षेत्र की कोल जनजाति के लोगों में अपनी जमीन बाहरी किसानों को हस्तांतरित होने, देशी शराब पर उत्पाद शुल्क लगाने तथा जबरन अफीम उगाने के लिये बाध्य करने के कारण व्यापक असंतोष था। 1831 ई. में बुद्धो भगत के नेतृत्व में कोल विद्रोहियों ने हजारों बाहरी किसानों को मार दिया। ब्रिटिश सरकार ने एक बड़े सैन्य अभियान के तहत कानून व्यवस्था एवं शांति की पुनर्स्थापना की। इस विद्रोह की एक विशेषता रही कि इसके दमन के बाद ब्रिटिश शासन ने अनेक प्रशासनिक परिवर्तन किये, जिसका मुख्य उद्देश्य पिछड़े क्षेत्रों के प्रशासन को सरल एवं लचीला रूप देना था।
2. **संथाल विद्रोह (1855-56 ई.)**- 19वीं सदी के जनजातीय विद्रोहों में सबसे महत्त्वपूर्ण विद्रोह संथाल विद्रोह था। इसका प्रमुख क्षेत्र भागलपुर से राजमहल की पहाड़ियों के बीच, जिसे 'दामन-ए-कोह' के नाम से जाना जाता है, तक था। कृषि करने वाली संथाल जनजाति पर साहूकारों और जमींदारों ने अत्याचार कर उन्हें भूमि से बेदखल कर दिया था। इस विद्रोह के दो प्रमुख नेता सिद्धो तथा कान्हू थे। ब्रिटिश सरकार ने 1856 ई. में एक बड़ी सैन्य कार्यवाही के बाद संथाल विद्रोह को क्रूरतापूर्वक दबा दिया। इस विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने संथाल क्षेत्र को पृथक् जिला घोषित कर उसका नामकरण 'संथाल परगना' कर दिया। इसके साथ ही किसी संथाल आदिवासी द्वारा गैर-संथाल को भूमि अंतरण गैर-कानूनी हो गया।
3. **रंपा विद्रोह (1879 ई.)** - यह विद्रोह आंध्र प्रदेश के गोदावरी जिले के उत्तर में स्थित 'रंपा' पहाड़ी क्षेत्र में सर्वप्रथम 1879 ई. में राजू रंपा के नेतृत्व में हुआ। यह विद्रोह साहूकारों के शोषण तथा वन कानून, जिसमें झूम कृषि पर प्रतिबंध एवं इमारती लकड़ी तथा चराई कर में वृद्धि का प्रावधान था, के विरुद्ध हुआ था। विद्रोही अपने आप को राम की सेना (रामदंडु) कहते थे। लेकिन, ब्रिटिश सरकार ने 1880 ई. में विद्रोह को दबा दिया। एक बार फिर 1922 से 1924 ई. के बीच अल्लूरी सीताराम राजू के नेतृत्व में यह विद्रोह चलता रहा।
4. **मुण्डा अथवा उल्गुलन विद्रोह (1898-1900 ई.)**- 1899-1900 ई. में मुंडाओं ने राँची के दक्षिण क्षेत्र में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में विद्रोह शुरू किया। यह एक महत्त्वपूर्ण आदिवासी विद्रोह था। मुंडा जनजाति में सामूहिक खेती का प्रचलन था, जिसे 'खुँटकट्टी' कहा जाता था। जागीरदारों के द्वारा खुँटकट्टी अधिकारों का उल्लंघन, अनुबंधित मजदूरों की समस्या एवं बेठ-बेगारी आदि कारणों ने मुंडा विद्रोह को जन्म दिया। मुंडा विद्रोह के संबंध में एक विशिष्ट बात यह है कि विद्रोह से पहले मुंडाओं ने कष्टों के निवारण के लिये वैधानिक उपायों का सहारा लिया, परन्तु जब उनकी उम्मीदें टूट गई, तभी उन्होंने विद्रोह किया।

इस आंदोलन में एक राजनीतिक और सामाजिक उद्देश्य से पूर्ण मसीहावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। बिरसा ने अपने को बिरसा भगवान घोषित किया तथा साथ ही अपने को विष्णु के छोटे भाई के रूप में चित्रित किया। बिरसा मुंडा द्वारा प्रारंभ किया गया यह आंदोलन एक प्रकार का सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक आंदोलन था। हालाँकि, यह विद्रोह दबा दिया गया, किंतु बिरसा के महान नेतृत्व के कारण यह ऐतिहासिक बन गया। इसमें महिलाओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

किसान आंदोलनः-

भारत पर ब्रिटिश नियंत्रण का अर्थ था भारत के गाँवों पर नियंत्रण। इसलिए ब्रिटिश शासन का सबसे अधिक कुप्रभाव गाँवों को झेलना पड़ा एवं भारतीय किसान उसके शिकार हुए।

ब्रिटिश शासन का भारतीय किसानों पर निम्नलिखित प्रभाव देखा गयाः-

1. किसानों पर भू-राजस्व का अत्यधिक दबाव डाला गया तथा अकाल की स्थिति में भी उनसे जबरन भू-राजस्व वसूल करने का प्रयास किया गया।
2. ब्रिटिश शासन की विदेशी प्रकृति भी कृषक असंतोष का एक कारण थी। किसान अपने आप को ब्रिटिश द्वारा स्थापित संस्थाओं तथा अधिकारियों से नहीं जोड़ पा रहे थे।
3. नकदी फसलों को प्रोत्साहन दिये जाने के कारण अकाल एवं भुखमरी की घटनाओं में वृद्धि हुई।
4. ब्रिटिश व्यापार नीति तथा औद्योगिक नीति के कारण ग्रामीण हस्तशिल्प उद्योग का पतन हुआ तथा कृषि पर जनसंख्या का अधिभार बढ़ता गया। इसके कारण ग्रामीण गरीबी एवं ग्रामीण ऋणग्रस्तता को बल मिला।
5. ब्रिटिश शक्ति के विस्तार के साथ भारत में कुछ प्रसिद्ध शासक एवं जमींदार विस्थापित हो गए। कई बार किसानों ने इन विस्थापित तत्त्वों के पक्ष में भी विद्रोह किया।

कुछ महत्वपूर्ण किसान आंदोलनः-

1. **संन्यासी एवं फकीर विद्रोह, बंगाल (1763-1800 ई.)**
2. **पागलपंथी विद्रोह, बंगाल (1824 ई.)**-इस विद्रोह के नेता करमशाह थे। उत्तरी बंगाल में हुए इस अर्द्ध-धार्मिक प्रकृति के विद्रोह का मुख्य कारण जमींदारों द्वारा कृषकों का शोषण करना था। आगे चलकर किसानों ने टीपू (करमशाह का पुत्र) नामक एक फकीर को अपना नेता बनाया। टीपू, बाउल संप्रदाय का अनुयायी था। बाउल संप्रदाय के लोग एक-दूसरे को 'पागल' कहते थे। आगे इस विद्रोह ने कानूनी रूप ले लिया तथा रैयतों ने मैमनसिंह जिले में अपना एक कानूनी प्रतिनिधि तथा स्थायी प्रतिनिधि मंडल नियुक्त कर दिया।
3. **फराजी आंदोलन, बंगाल (1838-57 ई.)**- 1838 ई. से 1851 ई. तक अफीम की जबरन खेती के विरोध में फरीदपुर के हाजी शरीयतुल्ला ने किसानों को संगठित किया। इस विद्रोह का प्रमुख कारण अधिक भू-राजस्व का निर्धारण तथा बड़े स्तर पर किसानों को उनकी जमीनों से बेदखल करना था। बाद में उसके पुत्र दूदूमियाँ ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया।
4. **मोपला विद्रोह, मालाबार क्षेत्र (1836-54 ई.)**- मोपला मालाबार तट के कृषक थे। मालाबार में भी अंग्रेजों की भू-राजस्व व्यवस्था से किसान असंतुष्ट थे। ब्रिटिश शासन भू-स्वामियों के अधिकारों पर बल देता था। अतः उसने भू-बंदोबस्ती के क्रम में उच्च वर्ग के हिंदूओं, नंबूदरी तथा नायर जेनमियों की शक्ति को पुनः अधिकाधिक अधिकार के साथ स्थापित कर दिया। इनमें से अनेक को पहले टीपू ने दक्षिण की तरफ खदेड़ दिया था तथा उनकी भूमि मुसलमान कृषकों, जो मोपला कहलाते थे, को आबंटित कर दी थीं। ब्रिटिश व्यवस्था के तहत मोपलाओं की सामूहिक रूप से भूमि से बेदखली का एक परिणाम तो यह हुआ कि मुसलमानों में सामुदायिक एकजुटता बढ़ी। नई व्यवस्था में इन मोपला रैयतों को रेहनदार बना दिया गया। इसके परिणामस्वरूप मोपला रैयतों ने जेनमियों के खिलाफ हिंसा प्रारम्भ कर दी। 1836 ई. से 1854 ई. के मध्य इस क्षेत्र में जेनमियों के अत्याचार के विरुद्ध 22 विद्रोह हुए। इस विद्रोह ने जेनमियों की सम्पत्ति पर आक्रमण और उनके मंदिरों को नष्ट करने का स्वरूप धारण कर लिया, परन्तु मोपला असंतोष की जड़ें स्पष्टतः कृषि व्यवस्था में थी।
5. **नील आंदोलन (1859-60 ई.)**- मोपला आंदोलन को अपवाद में रखा जाए तो सबसे अधिक उग्र और विस्तृत किसान आंदोलन 1859-60 ई. का नील विद्रोह था। बंगाल के नादिया जिले में दिगंबर विश्वास और विष्णु विश्वास के द्वारा आरंभ किया गया यह विद्रोह देखते-देखते संपूर्ण बंगाल में फैल गया। इस विद्रोह का प्रमुख कारण नील उत्पादकों, जो अधिकांशतः यूरोपीय थे, द्वारा कृषकों को जबरन नील की खेती करने तथा उत्पादित नील को कम कीमतों पर बेचने को मजबूर करना था। इतना ही नहीं, किसानों को कम कीमत वाला पैसा भी नहीं दिया जाता था और प्रायः उन्हें ठग लिया जाता था। विद्रोह की व्यापकता को देखते हुए सरकार ने एक नील आयोग का गठन किया, जिसने नील किसानों की माँग को सही बताया। दीनबंधु मित्र ने 'नील दर्पण' में किसानों की इसी विजय-गाथा का वर्णन किया है।
6. **बंगाल का पाबना विद्रोह (1873 ई.)**- 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बंगाल के पाबना जिले में जमींदारों के शोषण के विरुद्ध विद्रोह हुआ। 1859 ई. के बंगाल रैयत कानून में रैयतों को सुरक्षा दी गई थी। रैयत उन लाभों को प्राप्त करना चाहते थे, परन्तु जमींदार इसमें व्यवधान उपस्थित कर रहे थे। इस आंदोलन की विशिष्टता यह थी कि इसमें केवल जमींदारों को निशाना बनाया गया, ब्रिटिश सरकार को नहीं। किसानों के प्रयासों से 1885 ई. में बंगाल रैयत कानून पारित हुआ जिसने किसानों को कुछ राहत प्रदान की। इस विद्रोह को केंद्र में रखकर मुशर्रफ हुसैन ने 'जमींदार दर्पण' नामक नाटक लिखा था।

मॉडल प्रश्नः- *यह इतिहास की विडम्बना है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध भारत में प्रारंभिक प्रतिरोध तथाकथित अशिक्षित एवं असभ्य कहे जाने वाले लोगों की ओर से हुआ। सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।*

1857 का महाविद्रोह

1757 ई. में ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन एवं भारत के विभिन्न सामाजिक वर्गों के बीच हितों की टकराहट प्रारंभ हो गई थी। इसके कारण आगामी 100 वर्षों तक अनेक छोटे विद्रोह एवं आंदोलन घटित होते रहे। अंत में, 100 वर्षों के पश्चात् 1857 का महाविद्रोह घटित हुआ, जो अपने भौगोलिक विस्तार, व्यापकता एवं तीव्रता में पिछले विद्रोहों एवं आंदोलनों से पृथक था। यह भारतीयों में संचित असंतोष एवं आक्रोश का परिणाम था।

कारण

1. **राजनीतिक कारण:**- ब्रिटिश विस्तारवादी नीति के कारण अनेक राजा और नवाब विस्थापित हुए, उनके साथ-साथ उनके अधिकारी एवं सैनिक भी बेरोजगार हो गए। इस महाविद्रोह में इन असंतुष्ट तत्वों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
2. **आर्थिक कारण:**- ब्रिटिश बाजार के विस्तार के क्रम में भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों को गहरा धक्का लगा। इसके परिणामस्वरूप लाखों कारीगर एवं शिल्पी बेरोजगार हो गए।
3. **सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण:**- ब्रिटिश ने 19वीं सदी में भारत में समाज सुधार में भी रुचि दिखाते हुए विभिन्न कानून; जैसे- सती प्रथा उन्मूलन (1829 ई.) और विधवा पुनर्विवाह कानून (1856 ई.) बनाए थे। फिर 1850 ई. में डलहौजी द्वारा एक धार्मिक निर्योग्यता कानून लाया गया, जिसका उद्देश्य भारत में ईसाई धर्म के प्रसार को प्रोत्साहन देना था। इससे पूर्व 1813 ई. में ही में ईसाई मिशनरियों को धर्म प्रसार की छूट दी जा चुकी थी, परंतु जब ब्रिटिश द्वारा भारत के सामाजिक-धार्मिक मामले में हस्तक्षेप किया गया तो भारतीय अपने दीन एवं धर्म की रक्षा के लिये खड़े हो गए।
4. **सैनिक कारण:**- ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सफलता में बंगाल सेना की अहम भूमिका रही थी। इस सेना ने पूर्व में बर्मा से लेकर पश्चिम में अफगानिस्तान तक ब्रिटिश साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। परंतु, उनके साथ फिर भी नस्लवादी भेदभाव किया जा रहा था। उदाहरण के लिये, ब्रिटिश सैनिकों की तुलना में उन्हें कम वेतन और भत्ता दिया जाता था। उससे भी अधिक आपत्ति उन्हें इस बात पर थी कि उनके धार्मिक मामले में हस्तक्षेप किया जा रहा था। उदाहरण के लिये, सैनिक ड्रिल में समान अनुशासन को लागू करने के नाम पर उनके धार्मिक प्रतीकों; यथा- मस्तक में टीका लगाने पर पाबंदी आदि।
5. **चर्बी वाले कारतूसों का मुद्दा (तात्कालिक कारक):** सैनिकों की नियुक्ति में ब्रिटिश का झुकाव साक्षर और शिक्षित सैनिकों की नियुक्ति पर रहा था। इसलिये उन्होंने उत्तरी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से उच्च जाति के लोगों को सेना में भर्त्ती किया था। इस कारण सैनिकों में स्वाभाविक रूप से जातीय संवेदनशीलता आ गई तथा चर्बी वाले कारतूस के मामले ने एक विस्फोटक रूप ले लिया। दरअसल, नई रायफल के कारतूस में लगे कागज को मुँह से काटना पड़ता था। सेना में यह अफवाह फैल गई कि इस कारतूस में गाय तथा सुअर की चर्बी मिली हुई है, जो कालांतर में सही साबित हई। अत: सैनिकों ने ऐसे कारतूस को चलाने से मना कर दिया। सैनिकों के विरुद्ध कम्पनी सरकार ने कठोर कदम उठाया। अत: सैनिकों ने विद्रोह कर दिया।

1857 के महाविद्रोह का स्वरूप

- **विवाद क्यों?** - विवाद का कारण है आवश्यक अध्ययन स्रोतों की कमी।
- **निम्नलिखित कारणों से विद्रोही अपना लिखित दस्तावेज नहीं छोड़ पाये-**

1. पकड़े जाने के भय से उनमें से कुछ लोगों ने अपने दस्तावेजों को नष्ट कर दिया।
2. अनेक विद्रोही अशिक्षित थे, जिसके कारण उन्होंने कोई लिखित साक्ष्य नहीं छोड़ा।

उपर्युक्त कारणों से इस महाविद्रोह के ऊपर लिखने वाले विद्वानों ने सरकारी अभिलेखागार को आधार बनाया, जबकि सरकारी अभिलेखागार का बल इसके प्रभाव को कम करके दिखाना था।

इसे 'सिपाही विद्रोह' क्यों नहीं कहा जा सकता?

1. इस महाविद्रोह में शामिल हाने वाले महज सिपाही नहीं थे, बल्कि उनसे कहीं बड़ी संख्या गैर-सैनिकों की रही थी। इसमें सैनिकों के साथ-साथ कुलीन, किसान, शिल्पी एवं कारीगर, श्रमिक और जनजातीय लोगों, सभी की भागीदारी थी।
2. सिपाही किसानों से पृथक नहीं थे, बल्कि वे किसान परिवार से आते थे। इसलिए वे किसानों के असंतोष को भी व्यक्त कर रहे थे। अगर एक तरह से देखा जाये तो वे स्वयं वर्दी में किसान थे।

इसे भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में क्यों देखा जाने लगा है?

इसके निम्नलिखित कारण हैं -

1. नवीन अध्ययन सामग्रियों; यथा- समकालीन उर्दू साहित्य, भोजपुरी लोक साहित्य आदि के उपयोग से इस महाविद्रोह पर अधिक प्रकाश पड़ने लगा है।

2. इसका भौगोलिक विस्तार व्यापक माना जाता है। यह महज उत्तर भारत और मध्य भारत तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इसका प्रभाव मद्रास, कर्नाटक और मालाबार क्षेत्र तक देखा गया।

3. इसमें व्यापक सामाजिक भागीदारी भी देखी गई। आरंभ में इसमें केवल कुलीनों और सिपाहियों की भागीदारी मानी जाती थी, परन्तु अब हमें ज्ञात होता है इसमें बड़ी संख्या में किसान, श्रमिक, कारीगर एवं शिल्पी, जनजातीय लोग सभी शामिल हुए थे। नवीन शोधों के आधार पर इसमें कुलीन महिलाओं के साथ-साथ निम्न श्रेणी की महिलाओं की भागीदारी की सूचना भी मिलती है। उदाहरण के लिए, कानपुर में एक तवायफ अजीजुन बाई का कोठा विद्रोहियों का मिलन स्थल बन गया था। उसी प्रकार, अवंति बाई, झलकारी बाई आदि जैसी निम्न जाति की महिलाएँ भी इसमें शामिल हुईं थीं।

4. फिर एक क्षेत्र की घटना दूसरे क्षेत्र को प्रभावित कर रही थी और एक क्षेत्र के नेता की अपील दूसरे क्षेत्र के लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ने लगी थी।

5. सबसे बढ़कर भोजपुरी लोक साहित्य में जनआकांक्षा भी व्यक्त हुई है। यह आकांक्षा स्वतंत्रता के लिए है। उदाहरण के लिए, 'अब छोड़ दे फिरंगी हमार देसवा'।

1857 के महाविद्रोह की विफलता के कारण

- विद्रोहियों के समक्ष स्पष्ट लक्ष्य एवं कार्यक्रम का अभाव था।
- विभिन्न क्षेत्रों के नेताओं के बीच आपसी तालमेल का अभाव था।
- ब्रिटिश कंपनी को अनेक शासकों एवं कुलीनों का समर्थन प्राप्त था तथा नवोदित मध्यवर्ग का झुकाव भी ब्रिटिश की तरफ ही था।
- ब्रिटिश कम्पनी के पास बेहतर हथियार एवं संसाधन की उपलब्धता थी।
- ब्रिटिश कंपनी को कुछ योग्य अधिकारियों की सेवा प्राप्त हुई, यथा- नील, हडसन, ह्यूरोज, निकोलसन आदि।
- अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी ब्रिटिश के पक्ष में थीं, जैसे- इस समय तक क्रीमिया का युद्ध समाप्त हो चुका था। अत: ब्रिटिश को भारत में अतिरिक्त सेना मँगाने में सहूलियत हुई।
- विद्रोही सैनिकों पर अंधविश्वास का भी प्रभाव था, विशेषकर जब 1857 में धूमकेतु प्रकट हुआ, तो उन्होंने इसे अपशकुन का सूचक माना।

महत्त्व-

1. इसने क्रांतिकारी राष्ट्रवाद को प्रेरित किया। 1857 का विद्रोह भले ही तात्कालिक रूप से अपने लक्ष्य में सफल नहीं रहा हो, परंतु यह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रतिरोध का प्रतीक बन गया। इसकी 50वीं जयंती पर वी. डी. सावरकर के नेतृत्व में क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने इस महान घटना को याद किया।

2. यह हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक बन गया। इसलिए स्वतंत्रता आंदोलन के मध्य हिन्दू एवं मुस्लिमों के बीच गठबंधन को कायम करने के लिए भी इसे समय-समय पर याद किया गया।

3. 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौरान जिस प्रकार भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंका गया था, वह बरबस 1857 के महाविद्रोह की याद दिलाता है।

प्रश्न: 'चर्बी वाले कारतूस का मामला अपने आप में इतना बड़ा कारण नहीं था कि किसी भी साम्राज्य के उत्थान-पतन के लिए उत्तरदायी हो।' 1857 के महाविद्रोह के परिप्रेक्ष्य में इस कथन के औचित्य का परीक्षण कीजिए।

उत्तर: 1857 के महाविद्रोह के कारण एवं स्वरूप के निर्धारण का मुद्दा आरंभ से ही एक विवादास्पद मुद्दा रहा है और इसकी वजह रही है निष्पक्ष इतिहास लेखन का अभाव। ब्रिटिश इतिहासकारों का बल इसे महज सिपाही विद्रोह सिद्ध करना रहा था तथा इसके कारण को महज चर्बी वाले कारतूस की घटना तक सीमित रखना था।

परन्तु इसका वास्तविक कारण रहा था ब्रिटिश औपनिवेशिक हित और भारत के विभिन्न वर्गों के हितों के बीच सीधी टकराहट। ब्रिटिश शासन की स्थापना के काल से ही इसका कुप्रभाव विभिन्न वर्गों पर देखा गया। यथा- किसान, शिल्पी एवं कारीगर, जनजातीय समूह, कुछ पुराने राजा, नवाब और जमींदार, इन सभी की प्रतिक्रिया समय-समय पर विद्रोहों और आंदोलनों के रूप में फूटती रही थी। 1757 और 1857 के बीच लगभग 100 छिटपुट विद्रोह एवं आंदोलन होते रहे थे, जैसे- संथाल विद्रोह।

इस प्रकार, ब्रिटिश साम्राज्य ज्वालामुखी के मुख पर बैठा हुआ था। चर्बी वाले कारतूस की घटना ने इसके विस्फोट का पहला अवसर प्रदान किया। फिर देखते-देखते उसने जन-आंदोलन का रूप ले लिया। अत: विद्वान इसे भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के रूप में देखने लगे।

इसलिए इतने बड़े राजनीतिक उत्थान को महज चर्बी वाले कारतूस की घटना के रूप में देखकर इसके महत्व को कम करके आंकना सही नहीं है।

■■■

आधुनिक राष्ट्रवाद
(19वीं सदी का समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन)

भारतीय पुनर्जागरण क्यों?

- जिस प्रकार यूरोपीय पुनर्जागरण ने 14वीं सदी के यूरोप में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन दिया था, उसी प्रकार 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण ने भारत में आधुनिकीकरण को बल दिया।
- पुनर्जागरण एक प्रकार की बौद्धिक गतिशीलता थी जिसने भारतीय समाज के मध्य युग से आधुनिक युग में रूपांतरण को संभव बनाया।

उद्भव के कारण

निम्नलिखित कारकों ने आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव को संभव बनाया-

1. प्राच्यवादियों ने भारतीय संस्कृति के उद्घाटन तथा उसका गौरव गान करके भारतीयों में अतिरिक्त आत्मविश्वास पैदा किया।
2. अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों का एक समूह पश्चिम की उदारवादी विचारधारा के सम्पर्क में आया।
3. ईसाई मिशनरियों के द्वारा चर्च के प्रसार के क्रम में शिक्षा के विकास पर जो बल दिया गया, उसके कारण भी नवीन चेतना को प्रोत्साहन मिला।
4. प्रिंटिंग प्रेस के विकास के बाद आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन को बल मिला। इस कारण भी नवीन विचारधारा का प्रसार संभव हुआ।
5. ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप नये सामाजिक वर्ग, यथा- पूँजीपति, शिक्षित भारतीयों का वर्ग आदि अस्तित्व में आये, जिन्होंने नवीन विचारधारा को स्वीकृति प्रदान की।

इसे आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव से क्यों जोड़ा जाता है?

आधुनिक राष्ट्रवाद के उद्भव की एक आवश्यक शर्त होती है किसी राज्य अथवा देश में निवास करने वाले लोगों के बीच परस्पर जुड़े होने का भाव। 18वीं सदी के भारत में हमें यह भाव नहीं दिखता। इसका कारण था भारत का आंतरिक विभाजन अर्थात् भारत जातीय, लैंगिक एवं क्षेत्रीय विभाजन से ग्रस्त था। परन्तु 19वीं सदी के **समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन** ने उस आंतरिक विभाजन को कमजोर कर लोगों में एक होने का भाव जागृत किया।

किन बातों पर इसका बल रहा था?

इसका बल निम्नलिखित बातों पर रहा था-

1. **तर्कवाद:**- सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन एक तर्कवादी आंदोलन था। अत: समाज सुधारकों ने भारतीय समाज और संस्कृति के अध्ययन तथा सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति के लिये केवल ग्रंथों का सहारा नहीं लिया, बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी आधार बनाया। उन्होंने तर्क को ही आधार बनाकर सती प्रथा, बाल विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा आदि पर चोट की। उनके द्वारा बाल-विवाह की आलोचना इस आधार पर नहीं की गई कि यह शास्त्रों के द्वारा समर्थित नहीं है, बल्कि इस आधार पर की गई कि यह लड़कियों के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।
2. **मानववाद:**-इसके तहत पारलौकिकता के समानान्तर इहलौकिकता तथा ईश्वर के समानान्तर मानव की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया।
3. **व्यक्तिवाद:**- इसमें तर्कवाद एवं व्यक्ति की निजी पहचान पर बल देकर व्यक्तिवादी चेतना को प्रोत्साहन दिया गया। इस काल में धार्मिक ग्रंथ जनसामान्य को उपलब्ध कराए गए। अत: स्वाभाविक रूप में ग्रंथ के विश्लेषक के रूप में पुरोहितों की भूमिका कम हो गई।
4. **धार्मिक सार्वभौमवाद:**-धार्मिक सार्वभौमवाद से तात्पर्य है- धार्मिक विभाजन को नजरअंदाज कर देना तथा ईश्वर की एकता एवं मानव के बीच बंधुता पर बल दिया जाना।

विशेषताएँ अथवा स्वरूप:-

1. **प्रभाव बनाम प्रतिक्रिया:**-भारतीय बुद्धिजीवियों का एक वर्ग अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव में आया, परन्तु जल्द ही उन्हें पश्चिमी बुद्धिजीवियों के विचार एवं व्यवहार के बीच का अंतर नजर आने लगा। फिर उनमें प्रतिक्रिया हुई और उस प्रतिक्रिया में उन्होंने अपनी परम्परा की ओर देखा। इस प्रकार, पाश्चात्यवाद एवं परम्परावाद दोनों का प्रभाव बना रहा।
2. 19वीं सदी का भारतीय पुनर्जागरण पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव में आरंभ हुआ था, परन्तु आरंभ होने के पश्चात् इसने पश्चिमी मॉडल को ही चुनौती दे डाली।
3. यह मूलत: समाज सुधार आंदोलन था, परन्तु उस काल में समाज एवं धर्म दोनों एक-दूसरे के साथ गहरे रूप में जुड़े हुए थे। अधिकांश सामाजिक बुराईयों को धर्म से ही स्वीकृति मिलती थी, इसलिए समाज सुधार से पहले धर्म सुधार आवश्यक था।

समाज तथा धर्म सुधार आंदोलन की प्रकृति

कुछ संस्थाओं एवं सुधारकों पर पाश्चात्यवाद का अत्यधिक प्रभाव रहा, वहीं कुछ अन्य संस्थाओं एवं सुधारकों पर पाश्चात्यवाद और परम्परावाद के बीच संतुलन देखने को मिलता है। कुछ संस्थाएँ ऐसी हैं जिन पर परम्परावाद का बहुत अधिक प्रभाव है। इन्हें निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

पाश्चात्यवादी प्रवृत्तिः-

■ **यंग बंगाल आंदोलन-**

- इस आंदोलन के संगठनकर्त्ता हेनरी विवियन डेरोजियो थे। ये हिन्दू कॉलेज के प्राध्यापक पद पर रहे थे। इन्होंने अपने इर्द-गिर्द युवाओं का एक समूह खड़ा किया तथा यंग बंगाल आंदोलन की शुरूआत की। इस आंदोलन ने सुधार के लिए कदम उठाये, परन्तु इसकी सबसे बड़ी सीमा थी पाश्चात्यवाद। इस कारण इसने भारतीय अतीत के साथ अपना संबंध-विच्छेद करने का प्रयास किया। अतः इसे बंगाल के समाज में स्वीकृति नहीं मिली।

योगदान

1. बंगाली समाज की रूढ़िवादी विचारों पर चोट की तथा तर्कवाद को प्रोत्साहन दिया।
2. व्यक्ति एवं विचारों की स्वतंत्रता को बल प्रदान किया।
3. आधुनिक राष्ट्रवादी चेतना को प्रोत्साहन दिया।

पाश्चात्यवाद एवं परम्परावाद का समन्वयः-

■ **राजा राममोहन रायः-**

- राजा राममोहन राय का व्यक्तित्व पाश्चात्य एवं पूर्व के विचारों का संश्लेष्य था क्योंकि उन पर हिन्दू-बौद्ध संस्कृति और अरबी-फारसी संस्कृति एवं पाश्चात्य संस्कृति सभी का प्रभाव देखा जाता है।
- इन्होंने धर्म सुधार एवं समाज सुधार पर बल दिया और उसे भारत के आधुनिकीरण के लिए आवश्यक माना। उन्होंने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था हिन्दू धर्म को स्वच्छ बनाना और एकेश्वरवाद को प्रोत्साहन देना। उसी प्रकार, उन्होंने समाज सुधार के मोर्चे पर सती प्रथा के उन्मूलन को सफल बनाया।
- उन्होंने आधुनिक शिक्षा तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के लिए भी काम किया। उनके प्रयास से कलकत्ता में हिन्दू कॉलेज और वेदान्त कॉलेज की स्थापना हुई। उन्होंने पश्चिमी शिक्षा पर बल दिया क्योंकि वे आधुनिकीकरण के लिए पश्चिमी शिक्षा को आवश्यक मानते थे। उन्हें आधुनिक राष्ट्रवाद का जनक माना जाता है।

■ **प्रार्थना समाजः-**

- महाराष्ट्र में 1867 में 'प्रार्थना समाज' की स्थापना केशवचंद्र की प्रेरणा से डॉ. आत्माराम पांडुरंग ने की। बाद में आर.जी. भंडारकर तथा महादेव गोविंद रानाडे इस संगठन में शामिल हुए। इस समाज को प्रसिद्धि दिलाने का श्रेय रानाडे को ही जाता है।
- इसने जाति प्रथा की समाप्ति, विधवाओं के पुनर्विवाह, नारी-शिक्षा को बढ़ावा, बाल-विवाह के अंत आदि के पक्ष में प्रभावपूर्ण आवाज उठाई। इसने एक ब्रह्म की उपासना का संदेश दिया और धर्म को जातिगत रूढ़िवादिता से मुक्त करने का प्रयास किया।

■ **स्वामी विवेकानंद :-**

- **नव-वेदांतवादी-** स्वामी विवेकानन्द को नव वेदान्तवादी इसलिए कहा गया है कि जहाँ एक तरफ उन्होंने वेदान्त दर्शन के वैश्विक महत्व को उद्घाटित किया, वहीं उन्होंने नवीन आवश्यकताओं के अनुकूल वेदान्त दर्शन की व्याख्या की। उनका वेदान्त 'व्यावहारिक वेदान्त' कहा जाता है क्योंकि उन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार शोषित एवं पीड़ित लोगों के चेहरे में किया। इस संदर्भ में उन्होंने 'दरिद्र नारायण' की अवधारणा दी।
- **समाज सुधारक-** स्वामी विवेकानन्द भारत की प्रगति के लिए सामाजिक उत्थान आवश्यक समझते थे। उनका मानना था कि भारत जब तक जाति, नस्लवाद एवं क्षेत्रीय विभाजन को समाप्त नहीं करेगा, तब तक वह महान राष्ट्र नहीं बन सकता। वे मानते थे कि जब तक हमारी जनसंख्या का एक भाग शोषित और पीड़ित रहेगा, तब तक समाज का उत्थान नहीं होगा।
- **एक धार्मिक सुधारक-** उन्होंने धार्मिक कर्मकांडों पर प्रहार किया। एक तरफ, वे धर्म तथा आध्यात्म को पूर्वी संस्कृति की सबसे बड़ी शक्ति मानते थे, वहीं दूसरी तरफ, वे धार्मिक आडम्बर के विरोधी थे।
- **एक सामाजिक विचारक-** इनका मानना था कि भारतीय वर्ण व्यवस्था न केवल भारत, बल्कि विश्व के लगभग सभी देशों में विद्यमान रही है। सर्वप्रथम ब्राह्मणों के हाथ में सत्ता आयी, फिर क्रमशः क्षत्रिय, वैश्यों के हाथ में सत्ता आ गई। अब सत्ता शूद्रों के हाथों में आनी चाहिये जो बहुसंख्यक हैं। शूद्रों से उनका तात्पर्य श्रमिक वर्ग से था।

परंपरावादी प्रवृत्तिः-

■ **आर्य समाजः-**

- उत्तर भारत में आर्य समाज एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावकारी संस्था के रूप में स्थापित हुआ। इसकी स्थापना दयानंद सरस्वती ने 1875 में की। दयानंद सरस्वती ने प्राचीन ग्रंथ के रूप में वेदों के महत्व पर अत्यधिक बल दिया और उसे ही हिंदू धर्म का वास्तविक आधार माना।
- **योगदान-**

- वेदों के आधार पर उन्होंने मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, पुरोहितवाद, आदि धार्मिक कर्मकांडों पर चोट की।
- सामाजिक कुरीतियों के रूप में उन्होंने बाल विवाह, अंतर्जातीय विवाह तथा स्त्री शिक्षा का समर्थन किया। उन्होंने छुआछूत को अस्वीकर कर दिया एवं जाति विभाजन

की आलोचना की, किंतु उन्होंने वेदों पर आधारित चतुर्वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया।

- कॉलेज गुट के आर्य समाजियों ने डीएवी स्कूल एवं कॉलेज की स्थापना कर आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

- **सीमाएँ**-

- अत्यधिक पुनरुत्थानवादी होने के कारण इसने मुस्लिमों के प्रति विद्वेष को जन्म दिया।
- वेदों की व्याख्या उच्च वर्ण के हिंदुओं को ही आकर्षित कर सकी, जबकि निम्न जाति के लोग इसके प्रति आकर्षित नहीं हो सके।

प्रश्नः 'आर्य समाज आंदोलन ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण की नीति के विरूद्ध एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करता था।' इस कथन का समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उत्तरः- औपनिवेशिक शासन व्यवस्था किसी भी देश अथवा समाज के लिए आर्थिक शोषण की समस्या ही उत्पन्न नहीं करती, बल्कि उसकी उपस्थिति में एक प्रकार के सांस्कृतिक तनाव को भी जन्म देती है। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत ईसाई मिशनरियों की उपस्थिति में इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गई।

1813 में भारत में ईसाई मिशनरियों को खुले तौर पर धर्म प्रसार की छूट दी गई। इसके पश्चात् इन मिशनरियों के द्वारा निरंतर जनजातीय समूहों एवं दलित वर्ग के लोगों का ईसाई पंथ में धर्मान्तरण का प्रयास किया जाता रहा। परिणामस्वरूप 1881 की जनगणना में भारत में ईसाईयों की संख्या में वृद्धि देखी गई। यह कुछ हिन्दू सुधारकों की चिन्ता का कारण बना।

आर्य समाज ने ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण की नीति के विरूद्ध प्रतिक्रिया दिखाई। हालांकि हिन्दू धर्म के अंतर्गत ऐसा कोई धर्मान्तरण का मॉडल मौजूद नहीं था, परन्तु दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज में एक नये प्रकार के मॉडल 'शुद्धि आंदोलन' की शुरूआत की। इस आंदोलन का लक्ष्य था उन हिन्दुओं को, जो किसी दूसरे धर्म में धर्मान्तरित हो चुके थे उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में लाना। इसके लिए उन्होंने जोरदार प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

परन्तु औषधि रोग से भी ज्यादा घातक सिद्ध हुई। इसने अन्य धर्म के प्रचारकों को भी उकसाया। इस कारण भारतीय धार्मिक जीवन में साम्प्रदायिकता का जहर घुल गया।

प्रश्नः 'आर्य समाज अपनी तमाम विलक्षणताओं के बावजूद भारत में आंशिक आधुनिकीकरण नहीं ला सका।' इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उत्तरः अन्य सुधार आंदोलनों की तरह आर्य समाज भी भारत को एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के लिए संकल्पित था। अतः इसने आधुनिकता की दिशा में निम्नलिखित कदम उठायेः-

1. **धर्म सुधारः**- समाज सुधार से पहले धर्म सुधार एक आवश्यक शर्त था। आर्य समाज ने धर्म सुधार पर बल देते हुए पुरोहितवाद, संस्कारवाद, मंदिर में मूर्ति पूजा आदि की आलोचना की।
2. **समाज सुधारः**- उसने महिला उत्थान कार्यक्रम पर बल देते हुए बाल विवाह, सती प्रथा, विधवाओं की दयनीय दशा आदि पर चोट की तथा जाति शोषण एवं छुआ-छूत की आलोचना की। इस प्रकार, उसने जाति विभाजन एवं लैंगिक विभाजन को कमजोर कर दिया।
3. **आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहनः**- कॉलेज गुट के आर्य समाजियों ने डीएवी स्कूल एवं कॉलेज की स्थापना कर आधुनिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

- परन्तु निम्नलिखित कारणों से आर्य समाज आंदोलन अपेक्षित रूप से भारत में आधुनिकता नहीं ला सका।

1. यह समस्त ज्ञान का स्रोत वेदों को मानता था, इसलिए इसका दृष्टिकोण अत्यधिक परम्परावादी और रूढ़िवादी हो गया।
2. 'वेदों की ओर लौटो' का नारा निम्न जाति के लोगों को आकर्षित नहीं कर सका।
3. उसके द्वारा चलाए जाने वाले शुद्धि आंदोलन ने साम्प्रदायिकता को बल प्रदान किया।

मुस्लिम सुधार आंदोलन

1. **पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति**
2. **सुधारवादी प्रवृत्ति**

पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति को प्रेरित करने वाले कारकः-

1. मुस्लिम भारत में शासक वर्ग से जुड़े रहे थे। अतः उनमें सत्ता खो देने का तीखा एहसास था।
2. ब्रिटिश राजस्व नीति के तहत मुस्लिम किसानों का शोषण हो रहा था।
3. चूँकि प्रतिरोध के लिए उनके पास कोई आधुनिक विचारधारा नहीं थी, इसलिए उन्होंने धर्म को ही प्रतिरोध का आधार बनाया।

- **पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति को फराजी एवं वहाबी जैसे आंदोलनों ने प्रोत्साहन दिया।**

फराजी आंदोलन

- फराजी एक सम्प्रदाय था, जिसकी स्थापना हाजी शरीयतुल्ला ने की थी। 1838 एवं 1858 के बीच बंगाल में यह आंदोलन चला। आरम्भ में फराजी आन्दोलन अधिक राजस्व निर्धारण तथा बेदखल किये गए किसानों के

असंतोष के कारण आरम्भ हुआ, परन्तु आगे दूदू मियाँ के नेतृत्व में इस आन्दोलन ने रेडिकल धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों की वकालत की।

- फराजी आंदोलन ने इस्लाम को सभी प्रकार की गैर-इस्लामी प्रक्रिया से मुक्त कर उसे मूलरूप में स्थापित करना चाहा। साथ ही, इसने कुरान को मुख्य आध्यात्मिक निदेशक की मान्यता दिलाने का प्रयत्न किया। यद्यपि यह कृषक असंतोष का परिणाम था, परंतु इस पर धार्मिक रंग चढ़ गया।

वहाबी आंदोलन

- इस आंदोलन के आरंभिक प्रेरक अरब के एक प्रमुख संत शेख अब्दुल वहाब थे। भारत में उनके अनुयायियों ने वहाबी विचारों के आधार पर मुस्लिमों को संगठित करने का प्रयास किया तथा कृषक असंतोष को एक धार्मिक आंदोलन की दिशा दे दी। भारत में इस आंदोलन को लोकप्रियता सैयद अहमद रायबरेलवी के कारण मिली। यह आंदोलन उत्तर-पश्चिम, पूर्वी तथा मध्य भारत में सक्रिय रहा।
- इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य हजरत मुहम्मद साहब के इस्लाम को पुनर्स्थापित करना था अर्थात् 'दर-उल-हर्ब' (मूर्तिपूजक देश) को 'दर-उल-इस्लाम' (इस्लाम का देश) बनाना। पहले वहाबियों ने पंजाब के सिखों के विरुद्ध जेहाद की घोषणा की और आगे जब पंजाब पर ब्रिटिश का कब्जा हो गया, तो फिर वहाबियों ने ब्रिटिश के विरुद्ध जेहाद की घोषणा की।
- वहाबी आंदोलन अपनी सांप्रदायिक छवि के कारण कभी भी राष्ट्रीय आंदोलन का स्वरूप धारण नहीं कर सका।

सुधारवादी प्रवृत्ति

- **अलीगढ़ आंदोलन**, इसके संगठनकर्त्ता सर सैय्यद अहमद खान, काजी नजरूल इस्लाम तथा चिराग अली थे।
- **योगदानः-**

1. समाज सुधार के क्रम में महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य किया गया एवं पर्दा प्रथा का विरोध किया गया।
2. कुरान की आधुनिक व्याख्या की गई।
3. शिक्षा के विकास के लिए काम किया गया तथा 1875 में अलीगढ़ में एंग्लो-ओरिएंटल कॉलेज की स्थापना की गई।

- **सीमाएँः-**

1. सर सैय्यद अहमद खान इस मिथ्या धारणा के शिकार हो गए कि अगर भारतीय मुसलमानों को विकास के पथ पर बढ़ना है, तो उन्हें ब्रिटिश की कृपा प्राप्त करनी चाहिए।
2. वे मुसलमानों के आरक्षण के पक्षपाती तथा प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं के विकास के विरोधी बन गए।

आधुनिक भारत में समाज सुधार के केंद्र में महिलाएँ

- एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्या, जिसने 19वीं सदी के सुधारकों का ध्यान सबसे अधिक आकर्षित किया, वह थी महिलाओं की दशा। जेम्स मिल जैसे ब्रिटिश चिंतक ने यह घोषित किया था कि किसी भी सभ्यता की सफलता की कसौटी उसके अंतर्गत महिलाओं की दशा है। भारतीय सुधारकों ने इसे एक चुनौती के रूप में लिया। उन्होंने यह महसूस किया कि भारत की अधिकांश सामाजिक समस्याओं का कारण है- महिलाओं को हीन अवस्था।
- उस काल में महिलाओं से संबंधित सामाजिक कुरीतियों में बाल हत्या, बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा प्रथा आदि प्रचलित थीं। 19वीं सदी के सुधारकों ने उनकी दशा में सुधार के लिये निम्नलिखित कदम उठाए-
- **बाल हत्याः** बाल हत्या सामान्यतः राजपूतों में प्रचलित थी, जो कन्याओं के जन्म लेते ही उन्हें मार देते थे। गवर्नर जनरल जॉन शोर ने 1795 ई. में तथा वेलेजली के समय 1804 ई. में शिशु वध को प्रतिबंधित कर दिया।
- **सती प्रथाः** सती प्रथा के उन्मूलन के लिये 1829 ई. के बंगाल रेग्युलेशन के आधार पर कदम उठाया गया। 1830 ई. में मद्रास और बंबई में भी यह कानून लागू किया गया।
- **बाल विवाह का उन्मूलनः** भारत में बाल विवाह की समस्या प्रारंभ से रही है। आधुनिक काल में ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने इसे रोकने का साहसिक प्रयास किया। विद्यासागर तथा उनके समर्थकों के दबाव के कारण 1860 ई. में लड़की की विवाह की न्यूनतम आयु 10 वर्ष कर दी गई। इससे कम आयु में विवाह को अपराध घोषित कर दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने बाल विवाह को प्रतिबंधित करने के लिये समय-समय पर तीन अधिनियम पारित किये; सिविल मैरिज एक्ट या नेटिव मैरिज एक्ट (1872 ई.), सम्मति आयु अधिनियम (1891 ई.) तथा बाल विवाह निरोधक अधिनियम (शारदा एक्ट 1929)।
- **विधवा प्रथाः** इस काल में विधवा प्रथा भी एक प्रमुख समस्या थी। एक तरह से देखा जाए तो विधवा विवाह सती प्रथा उन्मूलन का तार्किक परिणाम था। जैसा कि हम जानते हैं कि जब तक विधवाओं की दशा में सुधार नहीं किया जाता, तब तक सती प्रथा उन्मूलन का कोई अर्थ नहीं था। अतः ईश्वर चंद्र विद्यासागर के अथक प्रयासों की वजह से 1856 ई. में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम लाया गया।
- **महिला शिक्षाः** महिला साक्षरता तथा महिला शिक्षा की स्थिति भी उन्नीसवीं सदी के सुधारकों के लिये चिंता का कारण थी क्योंकि महिलाओं की दशा में सुधार महिला

शिक्षा के बिना संभव नहीं था। अत: इस संदर्भ में समाज सुधारकों द्वारा उल्लेखनीय प्रयास किये गए।

- आगे चलकर **कुछ सजग महिलाएँ** भी सामने आई, जिन्होंने महिला उत्थान के लिये कार्य किया। **भोपाल की बेगम** ने अलीगढ़ में लड़कियों की शिक्षा के लिये स्कूल स्थापित किया। **बेगम रुकैय्या सखावत** तथा महाराष्ट्र की एक महिला **ताराबाई शिंदे** ने अपने प्रयास से शिक्षा प्रणाली स्थापित की तथा **'स्त्री-पुरुष तुलना'** नामक पुस्तक लिखकर पुरुषों के विशेषाधिकारों पर चोट की। उसी प्रकार पूना में सुधारक महिला के रूप में **पंडिता रमाबाई** ने एक विधवा आश्रम- शारदा सदन की स्थापना बंबई में की।

दलितवर्गीय आंदोलन

- 19वीं सदी के सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलन का प्रमुख बल जाति व्यवस्था में सुधार पर भी था, अत: इसके द्वारा जाति विभाजन की आलोचना की गई। इस दिशा में सर्वप्रथम पहल सवर्ण नेताओं ने की तथा राजा राममोहन राय से लेकर स्वामी विवेकानंद तक विभिन्न सुधारकों ने जाति व्यवस्था की आलोचना की। फिर भी शोषण को समाप्त करने के लिये कोई सक्रिय प्रयास नहीं किया गया था। अंत में कुछ दलित वर्ग के नेता उभरकर सामने आए और उन्होंने स्वयं जातीय शोषण के विरुद्ध संघर्ष आरंभ किया।

महाराष्ट्र

- **ज्योतिबा फुले**- उन्होंने सत्यशोधक समाज की स्थापना की तथा अपने पत्र 'गुलामगिरी' के माध्यम से अपने रैडिकल विचारों को व्यक्त किया। उन्होंने सवर्ण हिंदुओं को आर्य अथवा विदेशी करार दिया, जबकि निम्न एवं दलित जाति के लोगों को भारत का आरंभिक वाशिंदा कहा। इनके द्वारा पूना में निम्न जाति के लोगों के लिये एक बालिका विद्यालय की भी स्थापना की गई।
- **गोपाल बाबा वलंगकर**- 19वीं सदी के अंत में गोपाल बाबा वलंगकर द्वारा महार जाति को संगठित करने का प्रयास किया गया।
- **भीमराव अंबेडकर**- अंबेडकर ने 1920 के दशक में महार जाति को नेतृत्व प्रदान कर एक संगठित जाति आंदोलन खड़ा किया। अंबेडकर द्वारा महार जाति की दशा में सुधार के लिये निम्नलिखित कदम उठाए गए-

- मनुस्मृति जलाकर ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रति विरोध का प्रदर्शन किया गया।
- उन्होंने महारों को मरे हुए पशु को ढोने से परहेज करने का सुझाव दिया।
- 1930 के दशक में जबरन मंदिर प्रवेश कार्यक्रम प्रारंभ किया।
- दलित वर्ग के लिये संवैधानिक सुरक्षा की माँग की।
- अछूतों की दशा में सुधार के लिये उन्होंने अखिल भारतीय अछूत फेडरेशन का गठन किया।

■ **दलित वर्ग के उत्थान के लिए गाँधी और अंबेडकर के दृष्टिकोण में अंतर-**

1. अंबेडकर दलित वर्ग की दशा में सुधार के लिये राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता के हस्तांतरण को आवश्यक मानते थे, किंतु गाँधीजी समाज सुधार के माध्यम से दलित वर्ग की स्थिति में सुधार के समर्थक थे।
2. अंबेडकर दलितों की दशा सुधारने के लिये पृथक् निर्वाचक मंडल के समर्थक थे, जबकि गाँधीजी विरोधी थे।
3. अंबेडकर जाति व्यवस्था के विरोध में आक्रामक रवैया अपनाने के लिये तैयार रहते थे। उदाहरण के लिए, जबरन मंदिर प्रवेश, वहीं गाँधीजी मेल-मिलाप की नीति के माध्यम से दलित वर्ग की स्थिति में सुधार के समर्थक थे।
4. अंबेडकर जाति संरचना को समाप्त करना आवश्यक मानते थे, किंतु गाँधीजी जाति संरचना में सुधार के समर्थक थे।
5. अंबेडकर एक बुद्धिजीवी थे, किंतु व्यावहारिक रूप में जनसामान्य से कटे हुए थे, जबकि गाँधीजी एक जन नेता के साथ-साथ सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थे।

त्रावणकोर

- **श्री नारायण गुरु**- इन्होंने एक दलित जाति एझावा को संगठित कर एक संगठन 'श्री नारायण गुरु धर्म परिपालन योगम्' की स्थापना की। इनका नारा था- 'एक ईश्वर, एक धर्म व एक जाति।'

मद्रास

- **ई. वी. रामास्वामी नायकर 'पेरियार'**- मद्रास में जाति उत्पीड़न का विरोध करने वाले एक प्रमुख नेता के रूप में ई. वी. रामास्वामी नायकर उर्फ पेरियार का उद्भव हुआ। प्रारंभ में यह असहयोग आंदोलन में सक्रिय रहे थे, परंतु बाद में इन्होंने असहयोग आंदोलन से अपना नाता तोड़ दिया। यहाँ वी. रामास्वामी नायकर ने दलितों को संगठित करने का काम किया और 'आत्मसम्मान आंदोलन' चलाया। आत्मसम्मान आंदोलन में ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी गई तथा लोगों से ब्राह्मणवाद का विरोध करने के लिये आगे आने के लिए कहा गया। वे द्रविड़ राजनीति के पिता कहे जाते हैं।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का महत्त्व

- इस आंदोलन के साथ भारत में आधुनिकता का प्रवर्तन हुआ अर्थात् भारत में एक ऐसे आधुनिक समाज का निर्माण हुआ, जो युगीन चुनौतियों को स्वीकार कर सकता था।

- इसने भारतीय समाज की शल्य चिकित्सा कर दी। इसने कठोर जाति व्यवस्था पर प्रहार किया तथा धार्मिक कर्मकांडों एवं पुरोहितवाद पर चोट की, महिलाओं की दशा में सुधार के लिये कदम उठाए। इस प्रकार भारतीय समाज में उत्थान की प्रक्रिया को बल मिला।
- इसने प्रचलित सामंती सामाजिक मूल्यों पर चोट की। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक राष्ट्रवादी चेतना का विकास हुआ।
- क्षेत्रवाद, जातिवाद एवं लैंगिक विषमता के कम होने से आधुनिक राष्ट्रवाद की चेतना का विकास संभव हुआ।

सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन की सीमाएँ

- 19वीं सदी का भारतीय पुनर्जागरण धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र तक ही सीमित रहा। इसे यूरोपीय पुनर्जागरण की तरह भौगोलिक अन्वेषण अथवा वैकल्पिक अन्वेषण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ।
- 19वीं सदी के भारतीय सुधारक एक वैकल्पिक आधुनिकता को लाने में विफल रहे। उनका पाश्चात्य तत्त्वों के साथ देशी तत्त्वों को रचनात्मक रूप से जोड़ने का प्रयास असफल हो गया। यही वजह है कि भारत में बुद्धिजीवी वर्ग पाश्चात्य एवं देशी मॉडल के बीच विभाजित रहा। वहीं पाश्चात्य समर्थक आज भूमंडलीकरण की संस्कृति के कट्टर समर्थक के रूप में उभरे हैं, तो दूसरी तरफ देशी मॉडल के समर्थक परंपरा एवं धार्मिक पुनरुत्थान में लिप्त हैं।
- समाज सुधार से संबंधित कई संस्थाओं की दृष्टि अत्यधिक अतीतोन्मुखी थी। इसके परिणामस्वरूप पुनरुत्थानवादी प्रकृति को बल मिला तथा संप्रदायवाद को प्रोत्साहन मिला।
- कुछ हिंदू सुधारकों ने वेदों की श्रेष्ठता पर बल दिया तथा वेदोत्तर विकास को अस्वीकार कर दिया, जबकि उस समय तक वैदिक परंपरा भी पुरानी पड़ चुकी थी तथा वेदों की कुछ मान्यताओं पर स्वयं गीता ने प्रहार कर दिया था।
- समाज सुधारकों ने कुछ महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं को तो उठाया, किंतु कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं की उपेक्षा कर दी। उदाहरण के लिये, उन्होंने छुआछूत के उन्मूलन के लिये कोई विशेष काम नहीं किया। आगे गाँधीजी जैसे सुधारक के आगमन के पश्चात् इस दिशा में गंभीर प्रयास किया जा सका।
- 19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन का सामाजिक आधार अभिजात्य था, अतः यह नगरीय क्षेत्र तक ही सीमित था।

धार्मिक-सामाजिक धार्मिक आंदोलन से राजनीतिक आंदोलन की ओर

19वीं सदी का समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन भारतीय समाज में एक प्रकार की शल्य चिकित्सा सिद्ध हुआ क्योंकि उसके पश्चात् एक स्वच्छ भारत का निर्माण संभव हुआ तथा भारत का विकास आधुनिक राष्ट्र के रूप में संभव हुआ।

कहा जाता है कि 19वीं सदी का सुधार आंदोलन अंतर्वस्तु में राष्ट्रीय, जबकि बाह्य आकृति में धार्मिक था। धीरे-धीरे भारतीय राष्ट्रवाद समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन से राजनीतिक आंदोलन की ओर बढ़ने लगा। जैसा कि हम जानते हैं कि 1857 के महाविद्रोह के समय भारतीय मध्यम वर्ग का झुकाव ब्रिटिश की ओर रहा था, परन्तु अब धीरे-धीरे उनका ब्रिटिश शासन से मोह भंग होने लगा था। उनके द्वारा कई क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना की जा रही थी।

1870 में महादेव गोविन्द राणाडे ने पूना सार्वजनिक सभा की स्थापना की। 1866 में दादाभाई नौरोजी ने ईस्ट इंडिया एसोसिएशन का गठन किया। 1876 ई. में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और आनंद मोहन बोस ने इण्डियन एसोसिएशन का गठन किया। प्रभाव एंव प्रसार की दृष्टि से यह एक अखिल भारतीय संगठन था। इसके द्वारा दो प्रमुख मुद्दे उठाये गये थे- प्रथम, ब्रिटिश सिविल सेवा की आयु में वृद्धि का तथा दूसरा, देश की आजादी का था।

आगे, इसी श्रृंखला में 1885 में बंबई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई।

प्रश्नः 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण और राष्ट्रीय पहचान के उद्भव के मध्य संलग्नताओं का परीक्षण कीजिए।

उत्तरः- 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण से तात्पर्य है समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन, जो अपनी मूल उत्प्रेरणा में राष्ट्रीय था तो बाह्य आकृति में धार्मिक।

भारत में राष्ट्र निर्माण के मार्ग में कुछ निश्चित बाधाएँ थीं और ये बाधाएँ थीं भारत का आंतरिक विभाजन, यथा- लैंगिक विभाजन, जातीय विभाजन, क्षेत्रीय विभाजन आदि। जैसा कि हम जानते हैं कि आधुनिक राष्ट्र बनने की एक आवश्यक शर्त होती है उस क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों में परस्पर जुड़े होने का भाव। फिर इसके लिए आंतरिक विभाजन को कमजोर करना आवश्यक था। यहीं 19वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

भारतीय पुनर्जागरण का बल व्यापक सुधार कार्यक्रम पर रहा था, जो इस प्रकार हैं-

1. **धर्म सुधारः**-धर्म सुधार, समाज सुधार की एक आवश्यक शर्त थी क्योंकि धर्म और समाज के बीच गहरा जुड़ाव था।

अधिकांश सामाजिक बुराईयों को धार्मिक कर्मकांड से समर्थन मिलता था, इसलिए राजा राममोहन राय से लेकर रानाडे तक, सभी समाज सुधारकों ने मंदिर में मूर्ति पूजा, पुरोहितवाद आदि आडम्बरों पर चोट की। स्वामी विवेकानंद ने यह घोषित किया कि आगामी 50 वर्षों तक हमारा सबसे बड़ा धर्म, राष्ट्र धर्म है।

2. **समाज सुधारः**- 19वीं सदी के सुधारकों ने महिला उत्थान कार्यक्रम पर बल दिया तथा जाति विभाजन एवं छुआछूत को अपना निशाना बनाया। इसके परिणामस्वरूप लैंगिक विभाजन और जाति विभाजन कमजोर पड़ा। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, बिरेस लिंगम एवं डी.के. कर्वे जैसे सुधारकों ने महिला उत्थान के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया।

3. **आधुनिक विचारधारा को प्रोत्साहनः**- जैसा कि हम जानते हैं, इस काल में तर्कवाद, मानववाद, व्यक्तिवाद जैसी विचारधाराओं का उद्‌भव हुआ तथा आधुनिक युग में भारत के शिक्षित वर्ग के बीच इनका प्रसार हुआ, जिसके कारण क्षेत्रीय विभाजन कमजोर पड़ा।

इस प्रकार, 19वीं सदी के सुधार आंदोलन ने भारत को राष्ट्र निर्माण में प्रोत्साहन दिया।